

कैसी हो बाल सभा

रमेश थानवी

कैसी हो बाल सभा

रमेश थानवी

संस्करण :

प्रथम/बाल दिवस 1996

प्रकाशक :

उरमूल सीमान्त

बज्जू

(बीकानेर) 334305

कलापक्ष :

अडिग

मुद्रक :

सांखला प्रिण्टर्स, सुगन निवास

चन्दनसागर, बीकानेर 334001

KAISI HO BALSABHA : Ramesh Thanvi

कैसी हो बाल सभा

रमेश थानवी

उरमूल सीमान्त, बज्जू

अनुक्रम

आनंद, आत्मविश्वास और अनुशासन

बाल सभा पर बात करने के लिए यह कितबिया आपके हाथों में है।

शैक्षिक नवाचारों के इस दौर में बाल सभा कोई नवाचार नहीं है। यह तो बहुत पुरानी गतिविधि है। पुराने लोगों को अपने अपने स्कूल के दिनों की बाल सभा सहसा याद हो आए शायद।

पिछले कुछ बरसों में बहुत सारे स्कूल देखने का अवसर मिला। शिक्षाकर्मियों से निकट से जुड़े रहने के कारण उनकी शालाएं भी खूब देखीं।

अधिकांश स्कूलों से तो बाल सभा गायब हो गई है। बाल सभा की जगह आधी छुट्टी ने ले ली है। कई शालाओं में शनिवार को आधी छुट्टी हो जाती है। शनिवार है इसलिए आधी छुट्टी। आधी छुट्टी और शनिवार एक दूजे के पर्याय बन गए हैं बच्चों के लिए। बाल सभा इस बीच से गायब हो गई है। दरअसल आधा समय नियमित पढ़ाई के बाद शेष समय बच्चों की बाल सभा के लिए होता है। जिसे वे मिलकर हर बार बड़े रचनात्मक तरीके से आयोजित करें। सीखने के साथ सबको आनंद भी आए। मनोरंजन भी हो। सामूहिकता की भावना भी बढ़े।

पर वस्तुस्थिति ऐसी है नहीं। जहां बाल सभाएं होती भी हैं वहां वही कुछ बच्चे व्यक्तिगत रूप से सावधान की मुद्रा में खड़े

होकर एक सांस में अपनी कविता या गीत जयहिन्द के साथ पूरी कर देते हैं। गुरुजी भी उन्हीं उन्हीं बच्चों को हर बाल सभा में फिर फिर बुलाते रहते हैं, कोई नवीनता, कोई सामूहिकता नहीं दीखती सिर्फ औपचारिकता के।

मुझे लगातार लगता है कि बाल सभा एक बहुत ही उपयुक्त मंच हो सकता है जहां बच्चे आनंद के साथ आत्मविश्वास भी पाएं और अनुशासन भी।

रमेशजी से इस बारे में खूब बातें हुईं। उनको भी चिंता हुई। पिछले पूरे साल वे इस बारे में सोचते और शिक्षकों से बातें करते रहे।

'कैसी हो बाल सभा' उसी संवाद का परिणाम है।

यह कितबिया बाल सभा का 'मेनुअल' नहीं है।

यह एक बड़े संवाद का आधार है।

आपसे निवेदन है कि आप इस पर अपनी शालाओं में, अपने प्रशिक्षणों में, अपने समुदायों में, अपनी संस्थाओं में, अपने बच्चों के साथ, अपने गुरुओं के साथ, सीखने सिखाने वालों के साथ, अपने क्षेत्र में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ताओं सहयोगियों के साथ चर्चा करें, विचार करें।

इन संवादों का सार अपने सुझावों के साथ हमें जरूर भेजें। हम इस कितबिया को आपके सुझावों से विस्तार देकर सबके लिए उपयोगी एक किताब के रूप में आपको सौंप सकेंगे।

—अरविंद ओझा



हम बाल-सभा बुलाते हैं—बालकों को पंक्ति में बिठाते हैं, शांति से बैठने को कहते हैं, बारी बारी से बोलने को कहते हैं। बीच में कोई बोले तो रोक-टोक करते हैं। कोई काना-फूसी करे तो डांट-फटकार करते हैं। इस बीच हमारे भारी अनुशासन के कारण किसी को कोई शरारत सूझे और कहीं कोई कंकरी चल जाये, कोई सीटी बज जाये या और कोई चुहल हो जाये तो

लपक कर हम धर पकड़ करते हैं। बालक को खड़ा करते हैं। सजा देते हैं। उसे उसके अपराध का बोध कराते हैं। इतना अपमानित करते हैं कि वह फिर ऐसी कोई शरारत न करे। इसका असर एक बालक पर नहीं बल्कि सारी सभा पर पड़ता है। मास्टरजी की धाक जमती है और बालकों की बाल-सुलभ उत्सुकता एवं कौतुहल इस धाक के नीचे दब कर रह जाते हैं। जो सभा बालकों का मन खोलने के लिए आयोजित की गयी थी उसी सभा में बालक मन मसोस कर रह जाते हैं। जरा विचार करें कि ऐसी बाल-सभा कैसी बाल-सभा कहलाएगी?

एक और भी स्वरूप है बाल-सभा का। हर शनिवार को स्कूलों में होने वाली बाल-सभा। इस बाल-सभा का मंत्री वर्ष भर एक ही होता है। सभापति हर हफ्ते नया चुना जाता है। हर घंटे में से कुछ समय काट कर बाल-सभा के लिए समय निकाला जाता है। सभा के बाद सीधी छुट्टी होती है। इसका परिणाम यह होता है कि पूरी सभा में अधिसंख्य छात्र अनमने भाव से बैठे छुट्टी की घंटी की प्रतीक्षा करते हैं।

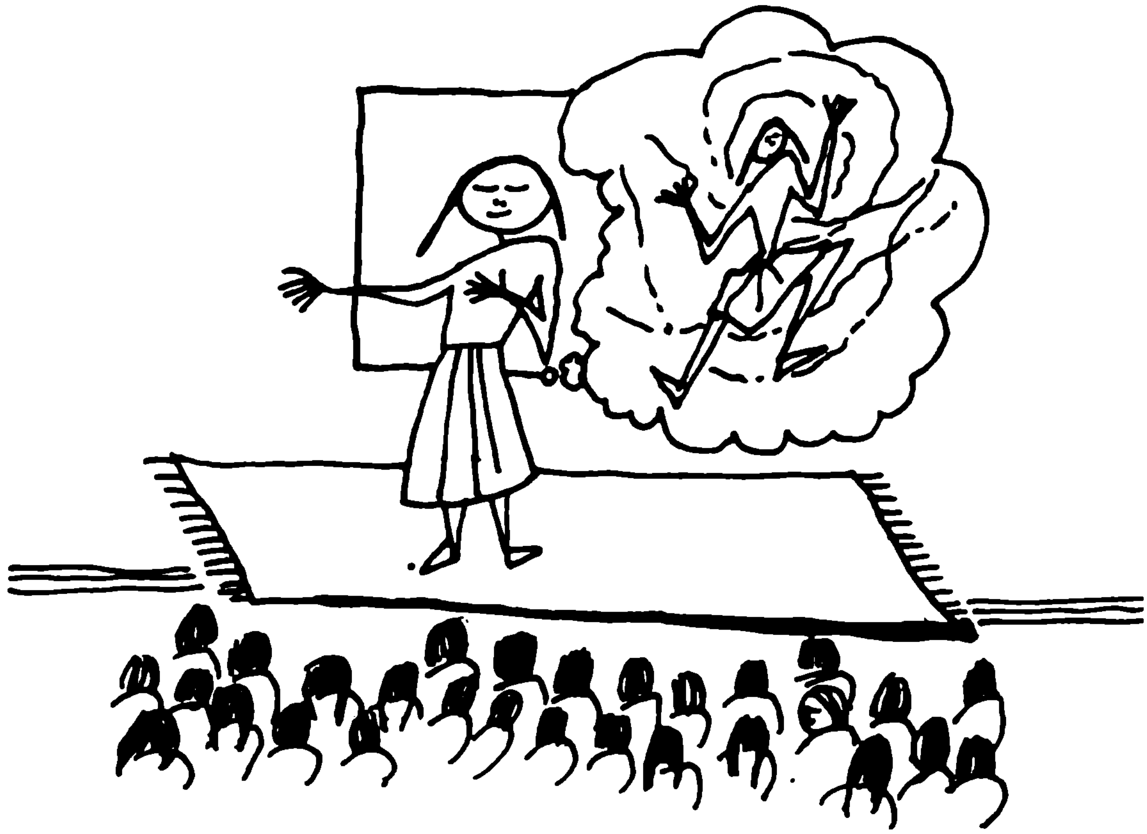
ऐसी बाल-सभाएं एक प्रशासनिक परिपत्र अथवा सरकारी आदेश की पूर्ति के वास्ते आयोजित होती हैं।

ऐसी बाल-सभाएं अध्यक्ष महोदय एवं गुरुजनों को संबोधित होती हैं। मंत्री महोदय द्वारा संचालित होती हैं। मंत्री जी पिछली बैठक की कार्रवाई पढ़ते हैं। ऐसी कार्रवाई एक रजिस्टर में लिखी जाती है। साल भर की सभी बाल-सभाओं की कार्रवाई एक ही रजिस्टर में लिखी जाती है। कार्रवाई पढ़ने के बाद अध्यक्षजी की अनुमति से बाल-सभा प्रारंभ होती है। घनघोर औपचारिक वातावरण में। बोलने को उत्सुक बालक अपना नाम देते हैं। इन नामों में बस, गिने-चुने नाम ही बने रहते हैं साल भर तक । नया नाम बमुश्किल जुड़ पाता है। वे विषय के पक्ष-विपक्ष में बोलते हैं। गुरुजनों द्वारा नियुक्त निर्णायक-मंडल उनको नंबर देता है। सभा के बाद अपना निर्णय सुनाता है। फिर अध्यक्षजी पहला दूसरा व तीसरा दर्जा पाने वाले छात्रों की सराहना करते हैं। बधाई देते हैं।

यह बाल-सभा सदा एक बंद कमरे में होती है। न भी हो कभी तो नितांत औपचारिक होती है। बहुत अनुशासन से हर छात्र अपनी अपनी कक्षा की पंक्ति में बैठता है और किसी विषय पर चल रहे भाषणों को सुनता है—चुपचाप। इस सभा में कभी वाद-विवाद प्रतियोगिता होती है तो कभी गीत/गायन/कविता

अथवा कहानी प्रतियोगिता। कभी कोई नहीं पूछता कि शिक्षा में सदियों से इन प्रतियोगिताओं का आयोजन क्यों चल रहा है? कोई भी शिक्षक कभी अपने से भी यह प्रश्न नहीं करता कि शिक्षा का असली उद्देश्य प्रतियोगी समाज बनाना है या सहयोगी समाज बनाना?

सपनों को कौन सुने?



कई स्कूलों के अध्यापकों को पूछने से पता चला है कि चुटकले सुनाने व हंसने-हंसाने की कोई प्रतियोगिता नहीं होती। खेलने-खिलाने के आयोजन भी नहीं होते। बड़ी से बड़ी गप्प लगाने या डींग हांकने के भी कोई आयोजन नहीं होते। कभी कोई अवसर ऐसा नहीं मिलता किसी भी बालक को कि वह कुछ रचना सीखे, सोचना व सृजन करना सीखे। न ऐसा ही कोई अवसर मिलता है कि सभी बालक अपना मन

खोल सकें, जी भर अपने मन की बातें कह सकें, उडेल सकें अपने आपको और हल्का कर सकें अपने जी को, चित्त-मन को। इन सभाओं में बालकों के **सपनों** के लिए भी कोई स्थान नहीं होता। कभी कोई नहीं कहता कि **'अपना सपना सुनाओ।'** कभी कोई प्रोत्साहित नहीं करता कि बच्चे अपने सपनों को याद रखें और **सपनों** की दुनिया में खो जायें।

सपनों की बात तो बहुत दूर की बात लग सकती है। इन सभाओं में तो बालकों की शिकायतों को भी कोई स्थान नहीं होता। कभी भी कोई बालकों से नहीं पूछता कि—'इस स्कूल से तुम्हें कोई शिकायत है?' 'किसी अध्यापक से तुम्हें कोई शिकायत है?' 'स्कूल के पुस्तकालय से तुम्हें कोई शिकायत है?' आदि कई प्रश्न हैं जो पूछे जा सकते हैं। बालकों की बात सुनी जा सकती है। उनको बोलने का अवसर दिया जा सकता है।

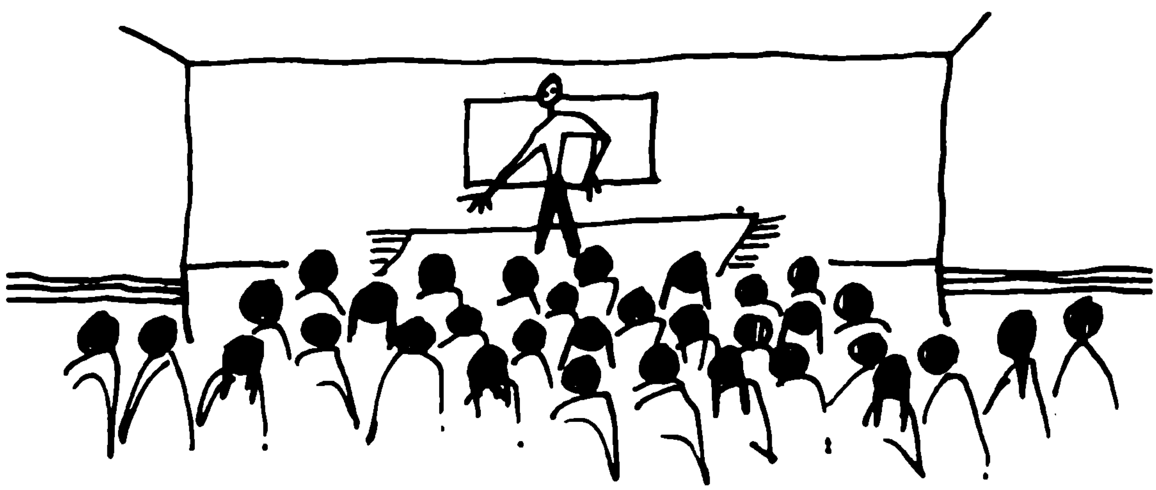
बाल सभा एक बड़ा अवसर प्रस्तुत कर सकती है—प्रश्न करने का अवसर। सवाल करने का अवसर। किताबी कोर्स से बाहर और कोर्स के अपने दायरों संबंधी सवाल करने का अवसर। अपने मन की नाना जिज्ञासाओं को जाहिर करने का अवसर। सवाल करना

भी एक बड़ा हुनर है। एक कला है और एक अच्छी बाल सभा यह कला सिखा सकती है।

मगर ऐसा नहीं होता है। ऐसा नहीं करती हैं हमारी बाल सभाएं। न वे हंसने और हंसाने का अवसर देती हैं, न मन खोलने और मन को हल्का करने का अवसर देती हैं, न सपने संजोने और सपनों में खो जाने का अवसर देती हैं और न ही बालकों की शिकायतें सुनती हैं, उनकी तकलीफों को कोई कान देती हैं। ऐसी स्थिति में हम इन बाल सभाओं को भला कैसे सफल बाल-सभा कहें?

एक तीसरा स्वरूप और भी है बाल सभाओं का—ये बाल सभाएं हैं आंगनशालाओं की, शिक्षाकर्मी केन्द्रों की, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की, अथवा दूसरे वैकल्पिक शिक्षा केन्द्रों की। यहां आयोजित होने वाली बाल सभाएं भी वैसी ही औपचारिक होती हैं। उतनी ही आरोपित। खुलापन कहीं नहीं? जबकि शिक्षा के इन वैकल्पिक प्रयासों का मुख्य उद्देश्य ही खुलापन है। वह खुलापन कम से कम बाल सभाओं में तो प्रकट होना ही चाहिए—मगर नहीं होता है ऐसा!

किसे कहते हैं बाल-सभा?



ऐसा इसलिए होता है कि हम **बाल-सभा** का अर्थ नहीं जानते हैं। जानकर के भूल गये हैं शायद। या फिर जान कर अनजान बन रहे हैं।

बहुत सरल शब्द है बाल-सभा। इसे सचमुच **'बाल' 'सभा'** ही होना चाहिए। बालकों द्वारा संकल्पित, बालकों द्वारा आयोजित, बालकों द्वारा संचालित एवं बालकों को संबोधित। इसमें बड़ों का काम ही क्या है? बड़े बीच में आ कर हमेशा इसे बड़ों की सभा में क्यूं बदल देते हैं? बाल-सभा को उलटने से ही बड़ों की

सभा बनती है। फिर भला ये पढ़े-लिखे अध्यापक लोग बाल-सभा को उलट देने में इतनी तत्परता क्यूं दिखाते हैं? बालकों की सभा को बालकों के भरोसे क्यूं नहीं छोड़ देते हैं?

यह जानना तब भी जरूरी होगा कि **किसे कहते हैं बाल-सभा?** क्या उद्देश्य हो सकते हैं बाल-सभा आयोजित करने के? क्या पाना चाहते हैं हम बाल-सभा आयोजित करके? हमें विचार करना चाहिए।

हमें अपने से पूछना चाहिए कि बाल-सभा बालकों की बात सुनने के लिए होती है या बालकों को अपनी बात सुनाने के लिए? बालक जो दिन भर कक्षा में बैठ कर हमारी बातें सुनते हैं वे क्या स्वयं कभी कुछ नहीं बोलना चाहेंगे। बालक जो सारे दिन, सारे सप्ताह, हर घंटे में चुप रहते हैं केवल, वे क्या कभी बोलना नहीं चाहेंगे। यदि हां तो हमें बाल-सभा को बालकों को बोलने देने का खुला अवसर देना चाहिए। पूरी तरह खुला। अपनी सारी वर्जनाओं को हमें ताक पर रख देना चाहिए। बालकों को खुली छूट देनी चाहिए कि वे बोलें और हम सब सुनें। हमें अपने कान बालकों के बोल सुनने के लिए खोल देने चाहिएं—पूरी फुर्सत के

साथ। इस विश्वास के साथ कि हम बालकों से कुछ सीख सकते हैं। **बालकों को सुनना भी शिक्षा का एक अनिवार्य अनुष्ठान है। एक आवश्यक शिक्षा-कर्म है। शिक्षा की पहली शर्त भी है।** यदि इस विश्वास के साथ बाल-सभा आयोजित होती है तो वह बालकों की बात सुनने का एक शैक्षिक उत्सव है। शिक्षा को उत्सव बनाने का एक अवसर है। वैसे भी हमें हर पाठशाला में, हर शिक्षा केन्द्र पर प्रतिदिन ऐसे किसी अवसर की तलाश में रहना चाहिए जब हम शिक्षा को एक उत्सव बना सकें। आनंद का उत्स बना सकें।

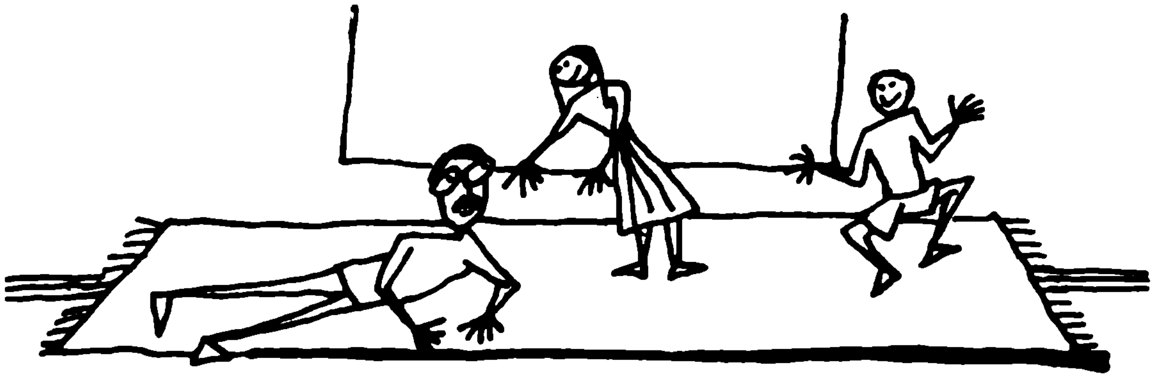
बाल-सभा ऐसा उत्सव बन कर बालकों को रचने का एक खुला अवसर प्रदान करती है। बालकों की सृजनात्मक शक्ति के विकास का अवसर बनती है। उनकी जिज्ञासा को जागृत करने का अवसर। उनके कुतुहल को बढ़ाने का अवसर। उनके मन में लाखों सवाल पैदा करने का अवसर। सवालों के सहारे बहुत कुछ नया पाने का अवसर। बहुत बार देखा गया है कि यदि बालकों को पूरी आजादी मिले तो सारी बाल-सभा 'क्यों ? क्यों ? क्यों ?' के कलरव में बदल जाती है।

ऐसे कलरव के बीच एक मेले का माहौल बनता है। बच्चे अपने सारे रंगीन मिज़ाज के साथ एक नये

सौंदर्य का सृजन करते हैं। कोई गुब्बारे लाता है तो कोई रंगीन खड़िया। कोई मैदान से सुन्दर कंकर बीन लाता है तो कोई रंगीन पतंगी कागज की फर्रियां बना कर वंदनवार बना बैठता है। ऐसा इसलिए होता है कि बालक स्वभाव से ही सृजनशील व सौंदर्य-सर्जक होता है। उसकी निर्मलता व निश्छलता में सौंदर्य कूट कूट कर भरा होता है। उसे प्रतीक्षा रहती है केवल आजादी की, एक खुले अवसर की। मगर हमारी स्कूलों के बंद पिंजरों में वह मन मसोस कर रह जाता है।

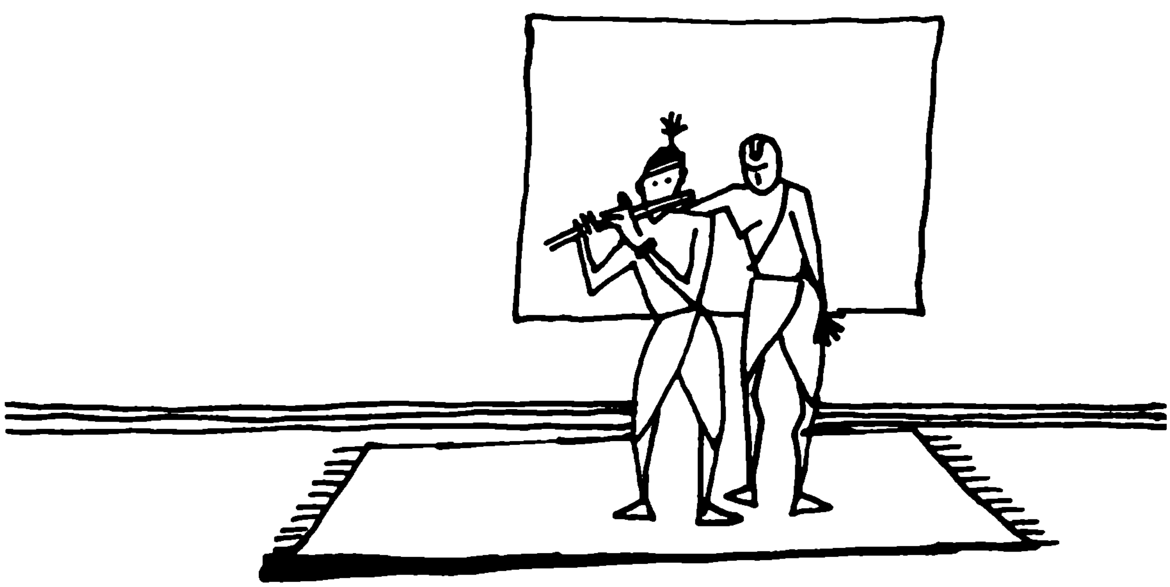
एक अच्छी बाल-सभा इस पिंजरे को खोलने का सार्थक प्रयास हो सकती है। तब वह बाल-सभा एक नया सवेरा ला सकती है। उषा के नव प्रकाश के साथ नये नये रंग-बिरंगे फूल खिला सकती है। धरती पर नया सौंदर्य बिखेर सकती है।

बाल-सभा के बाल-सखा



यदि हमारी कोई विवशता है ऐसी कि हम बालकों के भरोसे बाल-सभाओं को नहीं छोड़ सकते तो हम स्वयं बालक बन सकते हैं थोड़ी देर के लिए। क्या हर्ज है यदि कुछ घंटों के लिए अपने बड़प्पन को हम भूल जायें। अपनी मास्टरी को हम थोड़ी देर के लिए भूल जायें। अगर पूरी तरह से अपने बड़प्पन को भुलाना संभव नहीं हो तो हमें **बाल-सखा** बन जाना चाहिए। **बाल-मित्र** बन जाना चाहिए। बालकों के साथ अपने सखा संबंध को प्रगाढ़ बनाना चाहिए। उनके साथ खेल कर, गा कर, नाच कर और जमीन में लोट कर। यदि हम बाल-सभा में बालकों के सच्चे-सखा बन सकें तो बाल-सभा एक सच्चे उत्सव में बदल जायेगी। एक सहज आयोजन हो जायेगी। अपने सारे आरोपित आडंबर से मुक्त हो जायेगी। क्या हम ऐसा कर सकते हैं? क्या हम बाल-सखा बन सकते हैं? जरा विचारें।

निराली है सखा-भाव की महिमा

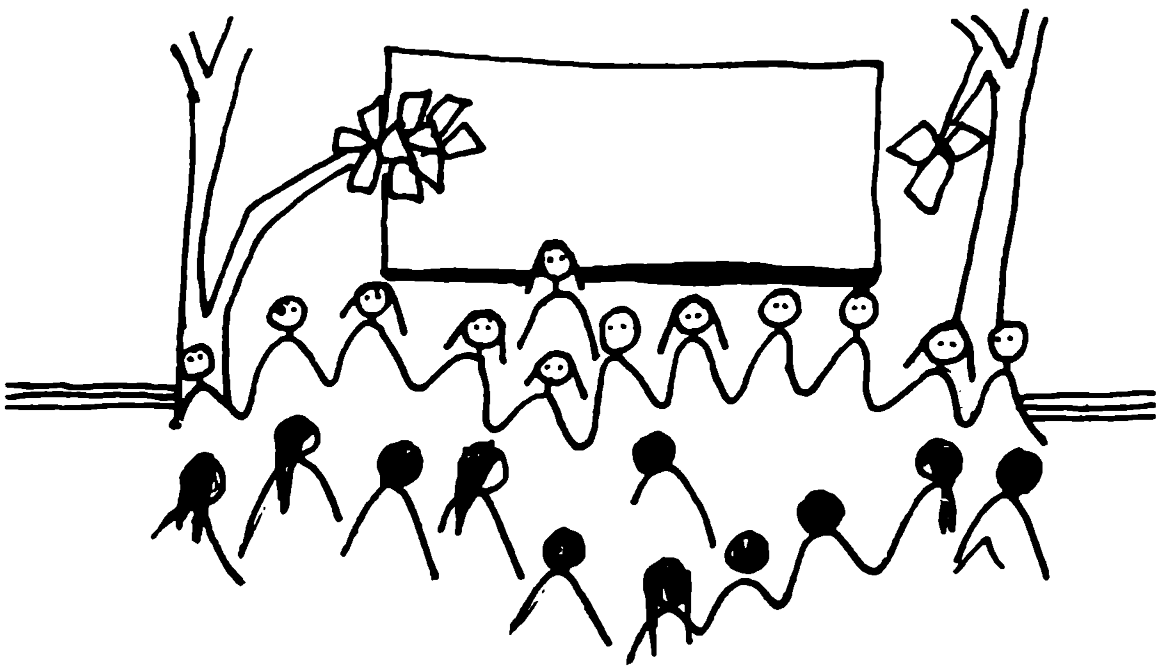


इस सखा-भाव की महिमा ही निराली है। बालकों की दुनिया में प्रवेश की पूर्व शर्त है यह सखा-भाव। इसके बिना बालकों से कोई संबंध बन ही नहीं सकते। यह बचपन की अपनी एक स्वभावगत अनिवार्यता है कि उसे कोई मित्र चाहिए, दोस्त चाहिए, सखा चाहिए। बिना दोस्ती या दोस्तों के किसी बालक की कल्पना संभव नहीं है। ये ऐसी दोस्ती होती है जो उम्र भर साथ चलती है। इसमें कुट्टी भी होती है और कुट्टी कैंसिल भी

होती है। अद्भुत होती है बचपन की दोस्ती भी। इसकी महिमा को समझने के लिए हर अध्यापक को, हर अनुदेशक को **कृष्ण-सुदामा** की कहानी याद करनी होगी। फिर से उसमें अवगाहन करना होगा। सखा-भाव का एक अंतः बोध अपने भीतर जगाना होगा। अपने सखा होने के बोध को भीतर महसूस करना होगा। यह पूछना होगा कि सखा-भाव का ऐसा कौन सा जादू होता है, जो राजा और रंक के भेद को मिटा देता है? जो 'अंसुवन के जल से पांव पखारने' का आंतरिक उल्लास जगा सकता है? जो गिजूभाई जैसे बड़े शिक्षक को भी बाल-मित्र ही बनाये रख सकता है—जीवन पर्यन्त?

यदि हम इन प्रश्नों पर विचार करते हैं तो पायेंगे कि बालकों की दुनिया में सखा बने बिना प्रवेश ही संभव नहीं है। बाल-सभा का आयोजन भी बाल-सखा बन कर ही संभव है।

क्या होगा बाल-सभा में?

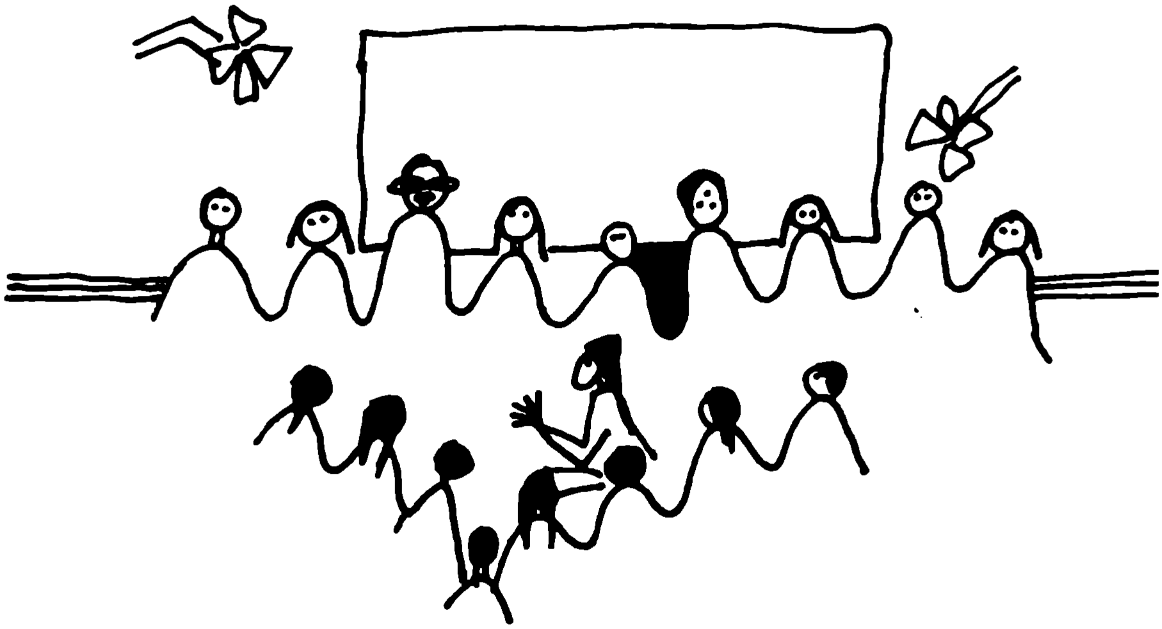


बाल-सभा में बालक मिलेंगे। साथ बैठेंगे। एक जाजम पर बैठेंगे। जाजम नहीं होगी तो जमीन पर बैठेंगे। कमरे में नहीं—खुले में बैठेंगे। खुले आसमान के नीचे। खुल कर बैठेंगे। किसी कतार या पंक्ति में बंध कर नहीं। खुल कर किसी घेरे में या सम-चौरस आकार में अपने सामने बैठेंगे। ऐसे कि सभी एक दूसरे का मुंह देख सकें। खुल कर बैठेंगे मगर बिखर कर नहीं बैठेंगे। खुल कर भी बैठेंगे और खिल कर भी बैठेंगे। किलकते हुए, आमोद-प्रमोद के मूड में।

उदास हो कर नहीं बैठेंगे। अपनी सारी मुदिता और मोद के साथ मिलने के लिए बैठेंगे। साथ-साथ मिलने के लिए। मौज-मस्ती के लिए। मिलने के अवसर को सुखदायी बनाने के लिए। तो बाल-सभा मिलने का एक मौका होगी। सुखदायी मौका।

मिलने के साथ साथ मन खोलने का एक मौका होगी बाल-सभा। मन की बात कहने का मौका। मन की बात सुनने का मौका। सब बच्चे अपनी बात कहेंगे। मन की बात कहेंगे। अपनी मरजी से कहेंगे। कभी शिकायत के स्वर में कहेंगे तो कभी किस्से की तर्ज में कहेंगे। कभी कोई कठिनाई दूर करने के लिए तो कभी अपना दुखड़ा सुनाने के लिए।

श्रोता होगी पूरी शाला



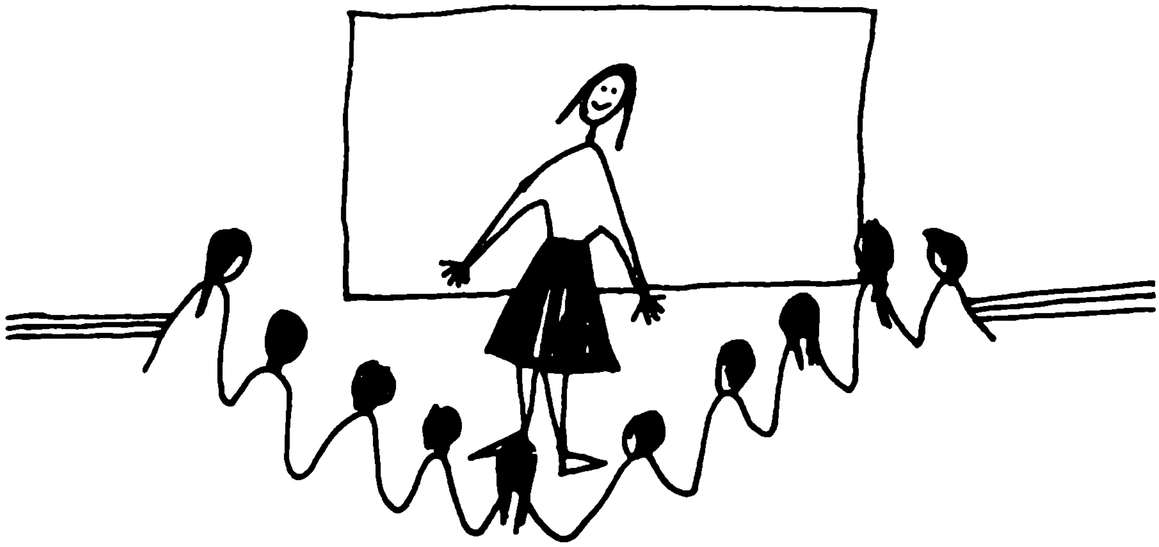
बालकों के मन का खुलना इतना आसान नहीं है। वह जितना पारदर्शी होता है उतना ही बंद भी। शर्मीला भी और संकोची भी। उसके संकोच को दूर करने के लिए किसी बालक को ही पहल करनी होगी। वातावरण को हल्का करते हुए अपना मन खोलने की पहल करनी होगी। यह घोषणा करनी होगी कि इस सभा के प्रथम श्रोता होंगे मास्टर लोग। शाला के सारे अध्यापक। पूरी शाला।

मास्टर जी या अनुदेशक जी या शिक्षाकर्मी जी यदि श्रोता होंगे तो उनको इस बाल-सभा में बैठना भी

होगा। बालकों की तरह ही बैठना होगा। बालकों के बीच बैठना होगा। उसी जमीन पर। उसी घेरे में। किसी अलग आसन पर नहीं। किसी ऊंची कुर्सी पर नहीं। बालकों के आगे व पीछे नहीं। हाथ में डंडा या सीटी लेकर नहीं। पूर्ण सहज भाव से केवल श्रोता बन कर। सखा बन कर। उम्र का भेद भूल कर। पद के मद से मुक्त हो कर।

अध्यापक जी, अनुदेशक जी या शिक्षाकर्मी भाई जब ऐसे सहज सखा-भाव से साथ बैठेंगे तो बालकों का उत्साह दूना हो जायेगा। उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहेगा। उनका मन पुलकित होगा और वे बिना किसी भय के अपनी बात मन खोल कर कह सकेंगे।

त्रुटियों का कोई भय नहीं होगा



सदियों से भारत की सभी शालाओं में बाल सभाओं में बोलने वाले बालक का पहला वाक्य यह होता है—

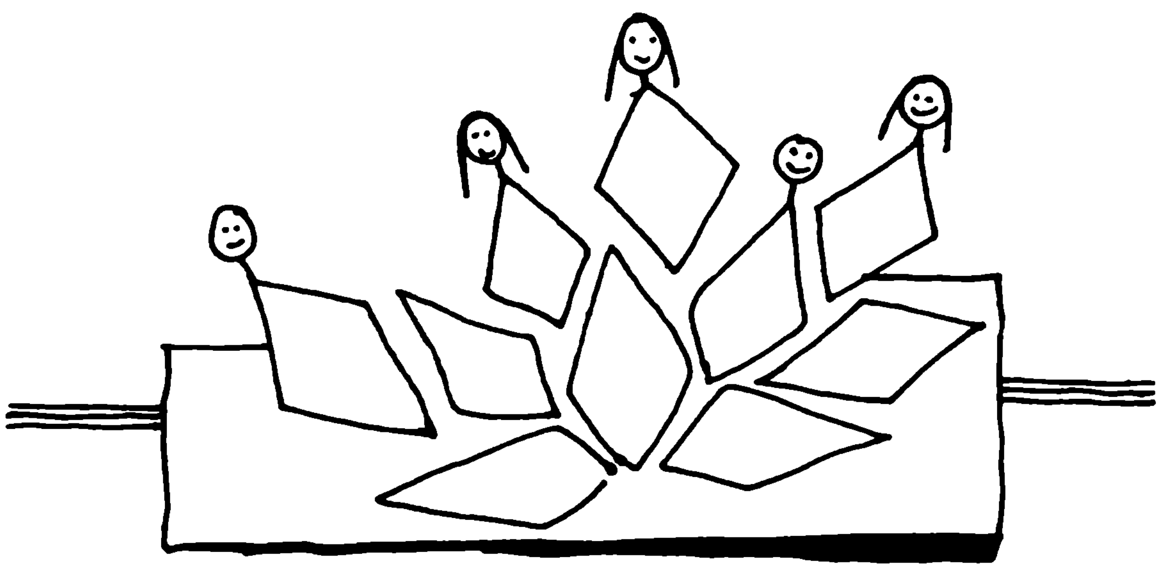
अध्यक्ष महोदय जी, पूज्य गुरुजनो एवं मित्रो,

मैं इस विषय के पक्ष/विपक्ष में अपने विचार रख रहा हूँ। कोई त्रुटि हो तो कृपया क्षमा करें।

जरा विचारें कि इस रटे-रटाये वाक्य के द्वारा त्रुटियों का भय क्यों पैदा किया जाता है? बालक अपनी

बात भय से क्यों प्रारंभ करता है? गुरुजनों से क्षमा मांगना कोई बुरी बात नहीं मगर त्रुटि के भय से बात प्रारम्भ करना तो बहुत बुरी बात है। यह एक उदाहरण ही काफी है यह दर्शाने को कि बाल-सभाएं अब तक भय का सृजन करती रही हैं। मगर आज हमें इस रीत को पलटना है। उलटना है। हमारी **बाल-सभाएं** अब अभय का सृजन करेंगी। बालकों को हर प्रकार के भय से मुक्त करेंगी। वे त्रुटियों से डरेंगे नहीं बल्कि अपनी त्रुटियों से सीखेंगे। गलती करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखेंगे। गलती करने की आजादी यदि नहीं मिलती है तो सीखने की शुरुआत ही नहीं हो सकती।

बचपन का मंचन होगा सभा में



बाल सभा में सबसे पहले तो 'बचपन' का मंचन होगा। बचपन का प्रदर्शन होगा। बचपन प्रकट होगा। सब कुछ बचपन-मय होगा, बालमय होगा। हर बालक अपनी पूरी ओज और उमंग के साथ सभा में आयेगा। अपनी आभा के साथ आयेगा। अपनी एक अलग पहचान को साथ ले कर आयेगा। अपने बचपन की इसी आभा और अनूठेपन के साथ बालक सभा में आयेंगे। सारी सभा में अपनी इसी आभा के साथ छा

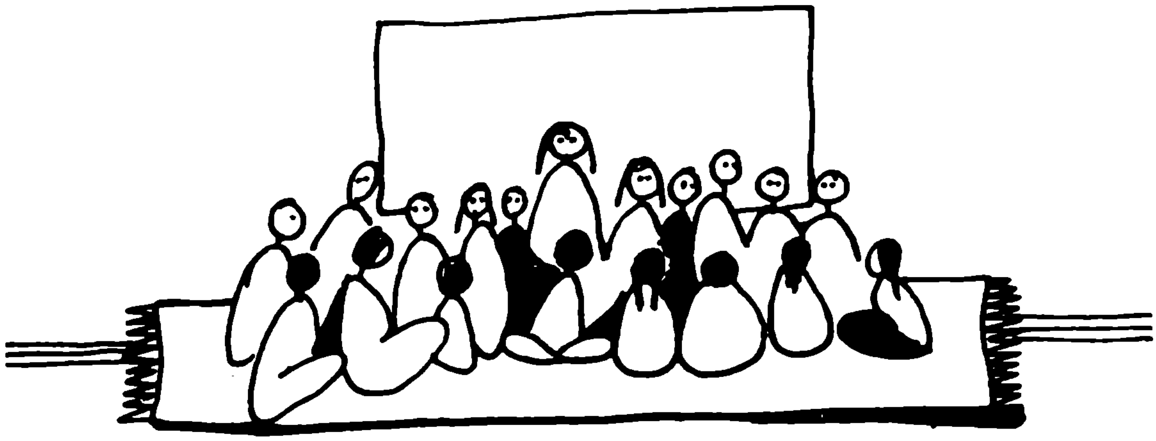
जायेंगे। तभी और केवल तभी ये सभा बाल सभा होगी। यहां बचपन के दर्शन होंगे। बचपन की विलक्षणता के दर्शन होंगे। बचपन के अनूठेपन के दर्शन होंगे। पूरी सभा के बाल-कलाकार मिलकर बचपन का मंचन करेंगे। अपनी सरलता के साथ, अपनी विरलता के साथ, अपनी मधुरता के साथ, अपनी निश्छल मुस्कान और निडरता के साथ। हर बालक अपने को प्रकट करेगा। अपने को उद्‌घाटित करेगा। सबके साथ होने के सुख को महसूस करेगा मगर फिर भी ताल ठोक कर यह भी कहेगा— 'हम किसी से कम नहीं।' होता भी नहीं कभी कोई बालक। हर बालक विलक्षण होता है। हर बालक एक अपवाद होता है। भूतो न भविष्यति की तर्ज में ही।

इस सभा में बचपन के भरपूर दर्शन होंगे मगर कहीं भी कुछ भी 'बचकाना' नहीं होगा। कहीं भी कोई 'बचकानापन' नहीं होगा। बचपन की विशेषता ही यह है कि वहां कहीं भी, कोई भी बचकानापन नहीं होता है। कोई छिछोरपन नहीं होता है। शुद्ध बचपन होता है। यह केवल बड़ों का संसार ही है जो बचकानेपन और छिछोरपन से भरा होता है। बाल-सभा में बचपन का सार्थक मंचन, बचपन के विराट दर्शन हमें इसी बारीक भेद को समझने देंगे।

हम स्वयं महसूस करेंगे कि कितने दिव्य होते हैं बाल-दर्शन, कितना विभोर करता है बचपन!

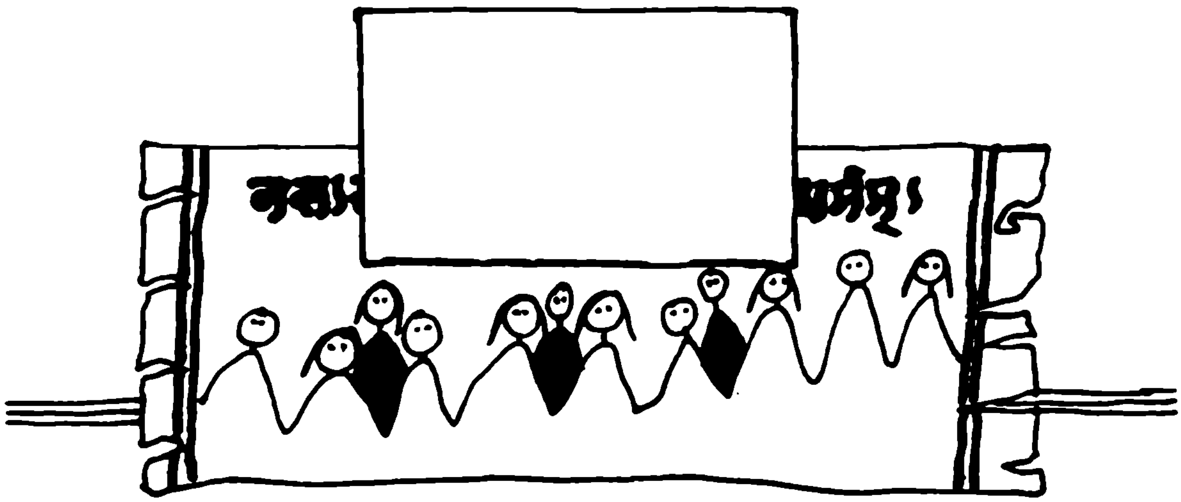
मगर ये होगा तभी जब हम अपने को इस सभा पर आरोपित नहीं करेंगे। बालकों को उन्मुक्त अवसर देंगे कि वे अपने को व्यक्त करें। अपने को प्रकट करें। प्रस्तुत करें। उद्घाटित करें।

सभा कभी मीटिंग नहीं होती



अब तक हमारे विद्यालय और बाद में विद्यालयों के विकल्प भी एक ही भूल को दोहराते रहे हैं। भयंकर भूल को। वे सभा के नाम पर मीटिंग करते रहे हैं। सभा के नाम पर एसेम्बली लगाते रहे हैं। मीटिंग और एसेम्बली के साथ आये घनघोर औपनिवेशिक अनुशासन को भोले-भाले बालकों की 'सभा' पर आरोपित करते रहे हैं। अंग्रेज हुक्मरानों द्वारा संकल्पित अनुशासन ही हमारी शालाओं पर आरोपित रहा है अब तक और उसी का एक नमूना रही हैं बाल-सभाएं। शालाओं का संचालन ही माई-बाप अंग्रेजी सरकार की मंशा व मरजी के अनुरूप होता रहा और इसीलिए यहां की बाकी व्यवस्थाएं भी उसी अंदाज से संचालित होती रहीं। उसी कारण से सभा मीटिंग बन गयी, एसेम्बली बन गयी।

सभा के शास्त्रीय अर्थ पर विचार



सभा दो अक्षरों का शब्द है। छोटासा शब्द मगर अपने भीतर बहुत सारे अर्थों को समेटे हुए। इस छोटे से शब्द के दोनों अक्षरों पर विचार करें—स का अर्थ है सम्मिलित होना, साथ होना, साथ चलना साथ रहना, साथ सीखना आदि।

सभा के दूसरे अक्षर 'भा' का अर्थ होता है प्रकाश, आभा, आलोक आदि। 'भा' के इसी अर्थ के कारण सूर्य को भानु कहते हैं, भास्कर कहते हैं। इस प्रकार स+भा =सभा का अर्थ होता है— उन लोगों की बैठक या उन लोगों का एकत्र होना जो सत्य के अन्वेषण और सत्य की आभा को लालायित हैं। इसका मतलब यह हुआ कि 'सभा' सदा एक शैक्षिक आयोजन

होती है। एक पवित्र आयोजन होती है। इसका एक अंतर्निहित उद्देश्य होता है— सत्यान्वेषण, सहजीवन, साहचर्य और सत्संग। सभा में सदा सत्य की विजय होती है। सत्यान्वेषी लोगों की विजय होती है। यहां कभी कोई अपमानित, प्रताड़ित या लांछित कैसे हो सकता है? यहां कभी कोई किसी का प्रतियोगी या वादी-प्रतिवादी कैसे हो सकता है? यहां कभी कोई हार कैसे सकता है? सभा को तो सदा सबकी जय विजय का एक आयोजन होना चाहिए। आलोकित आयोजन, उजला, धुला और खुला आयोजन। एक ऐसा आयोजन जहां कुछ भी छुपा नहीं है, ढका नहीं है। सभी कुछ अनावृत्त है। सत्य के तो दर्शन ही अनावरण से होते हैं। ये सारे अर्थ मुझे देवनागरी के इन दो अक्षरों 'स' व 'भा' में दिखाई देते हैं।

सभा के इसी सत्योन्मुखी स्वरूप को देखते हुए महाभारत में अपनी संपूर्ण तेजस्विता के साथ महाराज युधिष्ठिर कहते हैं :—

न सा सभा यत्र न संति वृद्धा,
न ते वृद्धा ये न वदंति धर्मम् ।
ना सो धर्मो यत्र न सत्यमस्ति,
न तत्सत्यं यच्छलेनातुविद्धम ।।

यही बात वाल्मीकि रामायण में भी कही गयी है और यही बात एक बौद्ध जातक में भी कही गयी है—

न सा सभा यत्थ न संति संतो,
न ते संतो ये न भणन्ति धम्मं।
रागं च दोसं च पहाय मोहं,
धम्मं भणन्ता व भवंति संतो।।

शास्त्रों में इस प्रकार सभा की गरिमा के गान का कारण यही है कि सभा एक महत्वपूर्ण संस्था थी। यह एक लोकतांत्रिक संस्था थी। इसका काम सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति का था। न्याय तथा मानवी मूल्यों की रक्षा का था। राजा के हस्तक्षेप से सर्वथा मुक्त होती थी। सभा में राजा का प्रवेश तक वर्जित था। सभा की अपनी एक स्वतन्त्रता थी, सत्ता थी। मर्यादा थी। सार्थकता थी। संभवतया यही कारण था कि सभा को प्रजापति की एक बेटी कहा गया था।

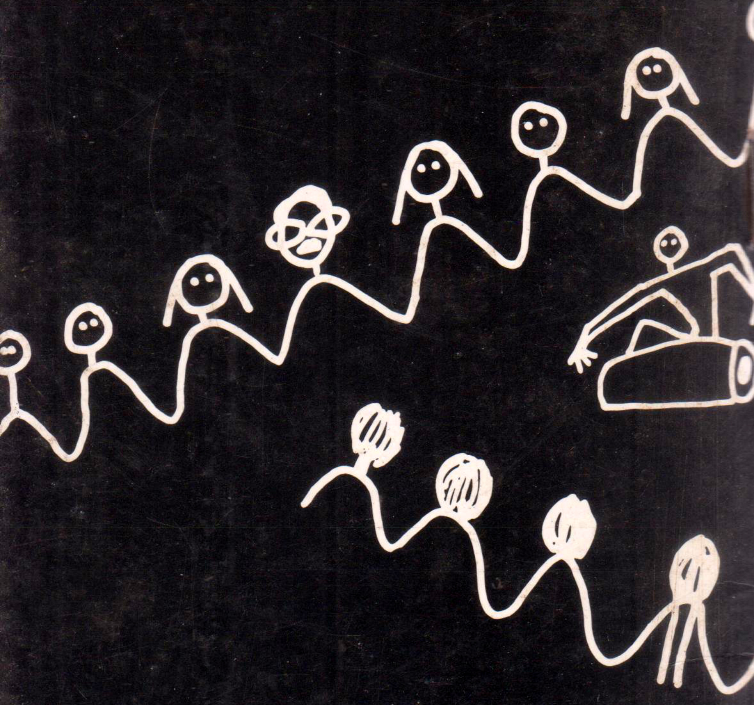
सभा के इन शास्त्रीय संदर्भों पर हमने प्रसंगवश बात की है। बाल-सभा के संदर्भ में जब इन शास्त्रीय संदर्भों को याद करते हैं तो हम इस देश की परम्परा से जुड़ते हैं। इसी परम्परा के संदर्भ में ही हमें तब बालक को व बचपन की पहचान पर चर्चा करनी चाहिए। पूछना चाहिए कि बालक किसे कहते हैं? क्या हम बालक को जानते हैं?

बालक को देखने का काम कवि सूरदास ने किया था। वे आंखों से नहीं देख सकते थे—मगर कृष्ण के बाल रूप की नाना भंगिमाओं को बसूबी देखा था। हर अदा पर वे स्वयं फिदा हुए थे और अपने साथ हमें भी फिदा कर गये। सूर के बाद समाज में बालकों की पुनः स्थापना करने की दृष्टि से वल्लभाचार्य की वात्सल्य परंपरा का अद्‌भुत योगदान रहा। 'रामचरितमानस' में भी बालकांड के बिना रामकथा की शुरुआत नहीं कर सके। यह दरअसल बाल-दर्शन की परम्परा थी। बाल-अवलोकन की। इस परम्परा में जो भाव प्रवणता थी, जो भाव-प्रबलता थी, भावों की जो भूख थी, हमें उसी भाव-भूमि पर पहुंचना होगा। वहीं पहुंच कर बालक को देखना होगा।

अच्छी व सच्ची **बाल सभा** हमारी भूखों को जगाने व उनको सींचने में हमारी मदद कर सकती है।

आओ प्रयास करें।

❑



उरमूल सीमान्त, बज्जू